सप्तम अध्याय

गुप्तजी के काव्य में मनोरंजन का चित्रण

गुप्तजी के काव्य में मनोरंजन का चित्रण

मानव समाज में मनोरंजन का बहुत अधिक महत्त्व है। कोई भी व्यक्ति प्रिय से प्रिय कार्य में भी दीर्घ काल तक संलग्न रहे तो उसके मन में ऊब या उकताहट का आ जाना स्वाभाविक है। जीविकोपार्जन के लिए स्वेच्छा से निर्वाचित कार्य में भी कुछ काल की संलग्नता के उपरान्त परिवर्तन की कामना जगती है। इस ऊब को या थकान को मिटाने के लिए कई उन्नत प्रतिष्ठानों में मध्यवर्ती विरामों की व्यवस्था की जाती है। कार्य की कठिनता या शुष्कता के अनुसार कारखानों में आठ घंटे के भीतर कहीं एकबार कहीं दो बार या कहीं तीन या चार बार तक माध्यमिक विश्राम होता है, जिसमें श्रमिक कुछ सुस्ताते हैं, गप्प लड़ाते हैं, गीत सुनते हैं अथवा चाय आदि पीते हैं। यही बात सभी युगों में होती आई है।

मनोरंजन के साधन असंख्य हैं। अपनी जीविका अथवा अपने मुख्य कार्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य मनोरंजन का स्थान ग्रहण कर सकता है। उदाहरण स्वरूप किसी व्यवसायी, अध्यापक अथवा किसान के लिए संगीत मनोरंजन का साधन हो सकता है, किन्तु गायकों के लिए संगीत मनोरंजन का साधन नहीं हो सकता उसके लिए बीच-बीच में पुस्तक पढ़ लेना, खेती या बागवानी कर लेना मनोरंजन का साधन हो सकता है। इसी प्रकार पेशेवर खिलाड़ी के लिए खेल मनोरंजन नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि जो जिस कार्य में लगा हुआ है उससे भिन्न कार्य को ही वह यथारुचि मनोरंजन के साधन के रूप में चुन सकता है। इस प्रकार मनोरंजन के साधन असंख्य हो जाते हैं। फिर भी उन्हें मुख्यतः दो भागों में बाटा जा सकता है :- 1) विशुद्ध मनोरंजन के साधन।
2) लाभप्रद मनोरंजन के साधन। (अन्य)

विशुद्ध मनोरंजन के साधन वे हैं जिनका मनोरंजन के अतिरिक्त और कोई फल नहीं होता। जैसे ताश खेलना, शतरंज खेलना, और कौड़ी खेलना।

मनोरंजन के अन्य साधन वे हैं जिनसे मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही कुछ लाभ भी हो जाता है जैसे - खेती, बागवानी, गो-पालन, और अध्ययन

आदि।

गुप्तजी ने जिन युगों का जन-जीवन चित्रित किया है, उनमें मनोरंजन के अनेक साधन वर्णित हुए हैं।

राजा लोग सदैव अपनी राज-सभा में चतुर कवियों को ससम्मान रखते थे। ये कवि सामान्यतः राजा के वृत्ति-भोगी हुआ करते थे। इनका मुख्य कार्य राजा की प्रशस्ति का गान करना था। उच्च कोटि के कवि राजा-प्रजा सबको समयोचित उपदेश तथा दिशा-संकेत भी देते थे इनमें अतिशय प्रत्युत्पन्नमतित्व हुआ करता था। इनकी आशु रचना कभी-कभी मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन होती थी। कवि की प्रशंसात्मक उक्तियों के द्वारा राजा का मनोरंजन होता था। गुप्त जी कृत " रंग में भंग " शीर्षक खण्ड काव्य में बताया गया है कि बूंदी-नरेश वरसिंह जी की राजधानी " गैनोली " में भूगर्भ से एक रमणीय रूप की प्रतिमा पाई गई। प्रतिमा चतुर्भुजी थी उसका एक हाथ नीचे की ओर एक हाथ ऊपर की ओर एक हाथ सामने की ओर और एक हाथ ग्रीवा की ओर निर्देश कर रहाथा। उस अद्भुत मूर्ति का लोग विचार करने लगे। राजा के सम्मुख राजकवि बारूजी भी बैठे थे उन्होंने इस प्रसंग के द्वारा राजा का मनोरंजन करने के लिए एक पद्य लिखकर सुनाया :-

" एक ऊँचा, एक नीचा, एक कर सम्मुख किये,
एक ग्रीवा पर धरे वह कह रही शोभा लिये
स्वर्ग में, पाताल में, नृप, आप-सा दानी नहीं,
शीश मैं अपना कटाऊँ जो मिले कोई कहीं।। "[1]

" बारूजी " का इतना उत्कृष्ट उत्तर सुनकर सभी कुतूहल में उत्फुल्ल हो गए और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; 2026 वि० ; पृष्ठ - 6

बहुधा देखा जाता है कि सामान्य से भिन्न किसी भी उच्चकोटि की व्यवस्था करने से व्यक्तियों का तथा उनके स्वजनों का विशेष मनोरंजन होताहै। इसका सबसे अच्छा निदर्शन है " बारात " बारात में विशेष प्रकार के कपड़े, विशेष परिकर विशेष रूप से सजाए गए हाथी, घोड़े, रथ-पालकी तथा गीत, वाद्य का प्रबन्ध हुआ करता है, जिनकी छटा लोगों की उत्फुल्लता तथा हास-विलास के लिए अनुकूल होती है :-

" विपुल-वाद्य-निनाद से आकाश जाता था फटा,
ऊँट, हय, हाथी, रथों की थी निराली ही छटा।
सब बाराती थे नहीं फूले समाते गात में,
मुख्य हास-विलास ही होता विवाह-बरात में॥"[1]

मनोरंजन का एक उत्कृष्ट साधन मानवेतर प्राणियों से खेल और मनो-विनोद भी है। 'शकुन्तला" शीर्षक खण्डकाव्य में गुप्त जी ने बताया है कि विदेह नन्दिनी वन, पशुओं के बीच विचरण करने में अलौकिक मोद का अनुभव करती हैं और पक्षियों के साथ खेल करने में अपने श्रम को भूल जाती है :-

" पंचवटी की छाया में जो
खेल खगों से करती है,
ममता-मूर्ति समान मृगों के
मध्य समोद विचरती हैं।"[2]

प्रकृति के साहचर्य्य के द्वारा मनुष्य को आनन्दलाभ होता है। वह नदी के किनारे, हरी-भरी लताओं के मध्य अथवा विविध चित्रों से भरे आकाश के नीचे टहल, घूमकर अथवा प्राकृतिक सुषमा निरखकर अपनी व्यथा को हल्का करने

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; 2026 वि० ; पृष्ठ - 7
2- मैथिलीशरणगुप्त - शकुन्तला ; अठारहवाँ सं०, 2026 वि० ; पृष्ठ - 5

का प्रयास करता है। प्रकृति-सेवन को मनुष्य ने मनोरंजन के प्रमुख साधनों में से एक माना है। कवि ने स्थल-स्थल पर यह भी दिखलाया है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में आकर्षक प्राकृतिक उपकरण सुख के स्थान पर गंभीर दुःख और पीड़ा के कारण बन जाते हैं।

भावुक के मन की प्रतिच्छाया प्रकृति के उपादानों में भी दिखाई पड़ती है। " पंचवटी " में चन्द्रमा की चंचल किरणें खेल करती हुई दिखाई पड़ती है। धरती पुलकित दिखाई पड़ती है और पेड़ पौधे भी आनन्द में झूमते आरहे हैं :-

" चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानों झीम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोकों से।"[1]

लक्ष्मण को ऐसा दिखाई दे रहा है मानो गोदावरी नदी और उसकी तरंगें उनकी मनोभावना के अनुसार थिरक रही हैं। सुमन, चन्द्र और नक्षत्र मानों उन्हीं की भावनाओं के अनुरूप ताल दे रहे हैं :-

" गोदावरी नदी का तट यह
ताल दे रहा है अब भी,
चंचल-जल कलकल कर मानो
ताल दे रहा है अब भी।

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; 2028 वि० ; पृष्ठ - 5

नाच रहे हैं अब भी पत्ते,
मन-से सुमन महकते हैं,
चन्द्र और नक्षत्र ललककर
लालच भरे लहकते हैं।"1

गुप्तजी ने अपने काव्य में पशु-पक्षी को भी चित्रित किया है। तत्कालीन समाज में पशु-पक्षी के प्रति स्नेह-भाव रखना उन्हें आहार देना साधरण बात थी मनुष्य पशु-पक्षी वर्ग से लेकर नानाप्रकार से मनोरंजन प्राप्त करता था। " पंचवटी " काव्य में कवि ने सीता को पशु-पक्षी के प्रति दया-भाव दिखाया है :-

" आ आकर विचित्र पशु-पक्षी
यहाँ दिखाते दोपहरी,
भाभी भोजन देती उनको,
पंचवटी छाया गहरी।
चारुचपल बालक ज्यों मिलकर
माँ को घेर खिलाते हैं
खेल-खिलाकर भी आर्या को
वे सब यहाँ रिझाते हैं। "2

पंचवटी के पक्षी गण राज-सभा के चतुर कवियों की भाँति गीत-रचना में और उनके गायन में पटु दिखाए गए हैं। वन की मयूरी मानों नृत्य करने में जनक नन्दिनी से होड़ लगाने को कटिबद्ध है। उनकी मनोदशा तथा प्रचेष्टाओं को देखकर लक्ष्मण का मन आनन्द से विह्वल हो जाता है और वे पंचवटी के सम्मुख अयोध्या की सुषमा को फीकी समझते हैं। यहाँ तो आँखों के आगे हरियाली ही हरियाली छाई हुई है और पग-पग पर झाड़ियों में झिर- झिर करते

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; 2028 वि० ; पृष्ठ - 13
2- वही, पृष्ठ - 13

झरनों की झड़ी लगी है। मुनि कन्याओं के प्रेरणादायक, मधुर गान और हरी दूबों के मस्तक पर मुकुट के समान पड़ी हुई हिमकणिकाओं की शोभा मन को मोह लेने के लिए पर्याप्त है। इन सबके ऊपर विहंगों का कूजन और मयूरी का नृत्य तो है ही :-

" वैतालिक विहंग भाभी के
सम्प्रति ध्यान लग्न-से।
नये गान की रचना में वे
कवि-कुल-तुल्य मग्न से हैं।
बीच-बीच में नर्तक केकी
मानो यह कह देता है-
मैं तो प्रस्तुत हूँ देखें कल
कौन बढ़ाई लेता है॥ "1

पंचवटी में सीता कभी-कभी मनोविनोद के लिए पक्षियों तथा मछलियों को दाने चुगाती है। सीता, लक्ष्मण से छड़ा उठाकर नदी की ओर जाने को कहती है और स्वयं मछलियों के लिए धान, समा ले जाती है :-

" चलो नदी को छड़े उठा लो,
करो और पुरुषार्थ क्षमा,
मैं मछलियाँ चुगाने को कुछ
ले चलती हूँ धान, समा। "2

तेरह वर्ष वन-वास रहते समय सुन्दर पर्णकुटी बनाली है पाण्डवों ने, जिसके समीप ही द्रुमों की शीतल छाया के साथ ही साथ अविरल, अबाध गति

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2027 वि0 ; पृष्ठ - 13
2- वही ,, 2028 वि0 ; पृष्ठ - 68 .

से बहने वाली नदी अपने शीतल जल से उन लोगों की प्यास बुझाने के कारण धन्य समझती है अपने को :-

" द्रुमों की छाया है गम्भीर,
बने हैं सुन्दर पर्ण-कुटीर।
निकट ही लहराता है नीर,
शान्त रहते हैं पाँचो वीर।
धर्म-धन की ही तृष्णा है,
साथ कल्याणी कृष्णा है। "1

सपत्नीक पाँचो भाइयों को तथा माता कुन्ती को वन का परिवेश बड़ा मनोहारी प्रतीत होता है। वे अपने स्नेह और प्रेम का प्रसार इतर प्राणियों के ऊपर भी करते हैं :-

" वहाँ जो खग-मृग चरते हैं,
प्यार उस पर वे करते हैं।
किन्तु मन ही मन डरते हैं,
पगों में ही सिर धरते हैं।
प्यार के बदले में निर्दिष्ट;
दया ही है उन सबको इष्ट। "2

प्रकृति के उपादानों में मानव अपने मन की छाया देखता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सभी उसकी भावना के सहभागी हो रहे हैं। " किसान " शीर्षक खण्डकाव्य में गुप्तजी कीनिम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - वन वैभव ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 8

2- वही, पृष्ठ - 10

" मुझसे ही मेरे साथी थे, सब मिलकर खेला करते,
हरी घास पर कभी लेटते, कभी दण्ड पेला करते।
मन निर्मल था, तन पर जो कुछ आ पड़ता झेला करते,
गुंजारित करते कानन को जब कि हर्ष-रेला करते।। "।

मनुष्य कितना ही थका-माँदा क्यों न हो, मनोनुकूल परिवेश को पाकर उसकी क्लान्ति दूर हो जाती है। सौन्दर्य तथा शोभा में स्वयं वे तत्व हैं, जिनसे भावनाओं की तृप्ति होती है और मनुष्य फिर से खोई हुई ऊर्जा को प्राप्त करता है। इन्हीं कारणों से प्रकृति के दृश्यों में और उसकी आकस्मिक घटनाओं में व्यक्ति अपनी ही उमंगों की प्रतिकृति पाता है। उसे ऐसा लगता है जैसे उसी के हृदय के उल्लास की ताल पर मोर थिरक रहे हों, मेघ मृदंग बजा रहे हों, कोयल तथा चातक तान आलाप रहे हों और घटा धरती को आनन्द के रस से सराबोर करती हो :-

" मोर नाचते थे उमंग से, मेघ मृदंग बजाते थे,
कोयल के सहयोगी होकर चंचल चातक गाते थे ;
रस बरसाती हुई घटा भी नीचे उतरी आती थी,
प्रकृति-नटी निज पट पल पल में प्रकट पलटती जाती थी। "[2]

वन-वैभव में एक स्थान पर सुरभि-सम्पन्न सरोज मालिका, सुललित वीचि-विलास, शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर तथा अगणित बीचियों के मुकुर में रूपायित चन्द्र बिम्ब की शोभा का ऐसा मनोरम वर्णन हुआ है जो मनको आनंद से ओत-प्रोत कर दे :-

" चाँदनी छिटकी थी उस रात,
विचरता था वासन्तिक वात।

1- मैथिलीशरणगुप्त - किसान ; 2019 वि० ; पृष्ठ - 10

2- वही, पृष्ठ - 11

सो रहे थे यद्यपि जलजात,
अयुतराशि ये सर में प्रतिभात।
सरस सर की निहार शोभा,
सुरों का मानस भी लोभा।"[1]

मनोरंजनार्थ वन में विहार करना, गान करना, कुंजों तथा वाटिकाओं में क्रीड़ा करना, आखेट, जलकेलि करना आदि मानव स्वभाव है:-

"अचानक इसी समय अनिवार
विपिन में करता हुआ विहार,
झूमता हुआ कुंजरकार,
साथ में लिये प्रणय-परिवार,
स्वयं भी जल विहार के हेतु
वहाँ पर आ पहुँचा कुरु-केतु।"[2]

पशु-पक्षियों को पालना भी मनोरंजन का एक प्रकार है। बहुधा देखा जाता कि मनुष्यों की तुलना में अधिक सरल तथा आत्मीय भाव से लिप्त होने वाले ये पशु और पक्षी ही हैं। लक्ष्मण के सौध में पालित शुक उन दोनों के दाम्पत्य जीवन को सरस बनाने में तथा उनके मनोरंजन करने में अतिशय सहायक है। उर्मिला के सौन्दर्य को देखकर कीर विमोहित हो जाता है और वाचालता खो बैठता है। उर्मिला उसके मौन का कारण जानना चाहती है तब लक्ष्मण उसे अद्भुत तर्क देते हुए शुक के माध्यम से ही शिष्ट मनोरंजन का परिचय देते हैं। वे कहते हैं कि यह शुक तुम्हारी नासिका को अन्य शुक समझकर स्तम्भित और मौन हो गया है:-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ संस्करण ; 2028 वि० ; पृ०-22
2- मैथिलीशरणगुप्त - वनवैभव ; 2005 वि० ; पृष्ठ - 22

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है।"1

साकेत में एक स्थान पर लक्ष्मण कीर पर अद्भुत आकांक्षा का आरोप करते हैं। वे कहते हैं कि कीर को एक प्रेमिका की अभिलाषा है:-

" जनकपुर की राज-कंज-विहारिका,
एक सुकुमारी सलौनी सारिका।"2

मनोरंजन के निमित्त सर्वाधिक श्रेष्ठ साधनों में ललितकला की गणना की जाती है। "कलाएँ समूहबद्ध मानव को और भी निकट सम्पर्क में लाती हैं।- हमारे भावों और विचारों की द्योतिका होने के कारण संस्कृति की परिचायिका होती हैं। इनके विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यापारों अथवा तत्वों में ये स्वरूप की दृष्टि से सर्वाधिक जातीय-किन्तु प्रभाव की दृष्टि से सबसे अधिक अन्तर्जातीय होती हैं। संगीत, नृत्य, वास्तुकला, चित्रकला मूर्तिकला आदि ऐसी ही कलाएँ हैं।

समाज केवल व्यक्तियों का एकत्रीकरण नहीं है, वरन् एक जीवन्त संघात है। नई पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों की अनुभूतियों से प्रभावित होती हैं और आनन्दोपलब्धि की दिशा ग्रहण करती हैं। इस प्रक्रिया के साथ ही विदेशियों से सम्पर्क भी होता रहता है। इन सभी के संघटन के फलस्वरूप एक विश्वजनीन व्यापक मानव-संस्कृति का निर्माण होता रहता है। अतएव अपने विशिष्ट दृष्टिकोण, आदर्शों, परम्पराओं तथा आचार-विचारों के कारण प्रत्येक देश की संस्कृति और कला भिन्न-भिन्न रूपाकार ग्रहण करती है। भारत में कलाओं

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत - 2025 वि० ; पृ० 29

2- वही, पृष्ठ - 32

का विकास इन्हीं कारणों से संस्कृति के विकास की सहगामिनी है। निश्चय ही भारतीय कला संस्कृति की भाँति ही सच्चे अर्थों में सामाजिक और जीवनोन्मुखी है।

साकेत के प्रथम सर्ग में गुप्त जी ने कला की उपादेयता की ओर संकेत किया है। कला केवल आनन्द देने के लिए नहीं है, वह जीवन्त मानवों को आदर्श की ओर उन्मुख करने में भी सहायक है:-

" हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए,
चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये।[1]

विरहावस्था में उर्मिला का उत्कृष्ट मनोरंजन है उसकी चित्रकारी। वह पारिवारिक सौहार्द की मधुर कल्पना से प्रेरित होकर चित्रांकन करना चाहती है, जिसमें राम, लक्ष्मण और सीता का पारस्परिक सद्भाव अभिव्यक्त हो। अपने भावी चित्र की विषय-वस्तु की कल्पना का उल्लेख वह अपनी सखी से निम्नलिखित शब्दों में कर रही है:-

कौन-सा दिखाऊँ दृश्य वन का बता मैं आज?
हो रही है आलि, मुझे चित्र-रचना की चाह,-
नाला पड़ा पथ में, किनारे जेठ-जीजी खड़े,

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत - 2025 वि० ; पृष्ठ - 37

अम्बु अवगाह आर्यपुत्र ले रहे हैं थाह?
किंवा वे खड़ी हों घूम प्रभु के सहारे आह,
तलवे से कण्टक निकालते हों ये कराह?
अथवा बुकाये खड़े हों ये लता और जीजी
फूल ले रही हों, प्रभु दे रहे हों, वाह वाह?"।

ललितेकलाओं में मनोरंजन के उच्चस्तरीय तत्व प्रचुर मात्राओं में विद्यमान रहते हैं। विश्व के अनेक देशों में चित्रकारों ने बड़ी-बड़ी सामाजिक क्रान्तियाँ की हैं और बौद्धिक क्षेत्र में समाज को नेतृत्व प्रदान किया। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियाँ भी इस कला के विकास में सदैव योगदान देती रही हैं। उन दिनों राजकुलोद्भव रमणियाँ ललित कलाओं की उपलब्धियों के लिए दिन-रात अथक परिश्रम करती थीं। साकेत में गुप्त जी ने उर्मिला की चित्रकला की निपुणता का परिचय कई स्थलों पर किया है। उर्मिला लक्ष्मण से कह रही है कि मैंने जो राज्याभिषेक का चित्र बनाया है उसे दिखला दूँ? यह सुनते ही लक्ष्मण को आश्चर्य होता है और वे आनन्द और कुतूहल से पग कर चित्र देखने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। उर्मिला मणिखचित मंचिका पर लक्ष्मण को बैठाकर उनके सम्मुख-चित्र फलक रख देती है। इसका चित्रण गुप्तजी ने इस प्रकार किया है:-

" तो तुम्हें अभिषेक दिखला दूँ अभी,
दृश्य उसका सामने ला दूँ सभी।"
" चित्र क्या तुमने बनाया है अहा?
हर्ष से सौमित्रि ने साग्रह कहा-
तो तनिक लाओ दिखाओ है कहाँ?
"कुछ" नहीं मैं बहुत कुछ दूँगा यहाँ।

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 276

उर्मिला ने मूर्ति बनकर प्रेम की,
खींचकर मणिखचित मचिया हेम की,
आप प्रियतम को बिठा उस पर दिया,
और लाकर चित्रपट सम्मुख किया।
चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ-से सौमित्र भी।"[1]

कवि ने बताया है कि चित्र की भाव-प्रवणता और वर-वर्णता वर्णनातीत है। ऐसा प्रतीत होता था मानों तूलिका सर्वत्र सधी और तुली हो। चित्र निरखते-निरखते लक्ष्मण अपनी-सुध-बुध खो बैठते हैं। चित्र में रामराज्य की आकर्षक झाँकी है। चित्रकार ने अयोध्या के राज-मण्डप की यथार्थ शोभा का बड़ाही मर्मस्पर्शी अंकन किया है। फलक को देखने से अतीत साकार हो उठता है। वर्णों के मध्य से जीवन का स्पदंन अपनी सारी रंगीनियों के साथ रूपायित हो गया है:-

"सब सभासद शिष्ट हैं, न्याय-निष्ठ हैं,
छोड़ते अभिषेक-वारि बसिष्ठ हैं।
आर्य-आर्या हैं तनिक कैसे झुके,
आज मानो लोक-भार उठा चुके।
बरसती है खचित मणियों की प्रभा,
तेज में डूबी हुई है सब सभा।"[2]

उर्मिला उच्चकोटि की कलाकार है। वह चित्र-कला में अत्यन्त निपुण है। वह राम-राज्याभिषेक का जो चित्र निर्माण करती है, उसकी भाव-प्रवणता,

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 34
2- वही - पृष्ठ - 36

वर-वर्णना; रचना पद्धति, सूक्ष्म-भाव-प्रकाशन, विचित्रता आदि को देखकर लक्ष्मण भी अवाक् रह जाते हैं, उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं रहती और बहुत देर तक उस चित्र को देखते रहते हैं। उस चित्र में उर्मिला सभा मंडप में लगी हुई झालरों के मोती तक को अत्यन्त कुशलता के साथ अंकित करती है और भरत आदि जो व्यक्ति वहाँ उपस्थित भी नहीं हैं, उनको भी चित्र में अंकित कर के अपनी कला द्वारा अपूर्णता की भी पूर्ति कर देती है। इतना ही नहीं वह चित्रकला में इतनी पटु है कि लक्ष्मण के कहने पर उनका चित्र भी तुरन्त उसी राज्याभिषेक के चित्र में अंकित करने लग जाती है। यह दूसरी बात है कि सात्विक भावों के उद्रेक के कारण लक्ष्मण का चित्र पूरा नहीं बनता और रंग फैलकर सारे चित्र को बिगाड़ देता है ; किन्तु उसकी कुशलता एवं निपुणता सर्वत्र सराहनीय है। वह वियोग के क्षणों में भी चित्रपट एवं तूलिका को अपने साथ रखती है:-

" क्या क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ?
है ही क्या हा ! आज जो मैं जताऊँ?
तो भी तूली, पुस्तिका और बीणा,
चौथी मैं हूँ पाँचवी तू प्रवीणा।"[1]

उर्मिला ने विरहिणी बाला का जो चित्र नवमसर्ग में अंकित किया है, वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है, क्योंकि उसमें विरहिणी के जल मरने पर उसके विरही पति का आना और उसके आँसू के गिरते ही एक लता का उत्पन्न हो-कर उस विरही से लिपट जाना अत्यन्त मार्मिक एवं मनोमुग्धकारी है:-

" आ, अंकित कर उसे दिखाऊँ,
इस चिन्ता से निष्कृति पाऊँ,
डरती हूँ, फिर भूल न जाऊँ
मैं हूँ भूली-भूली

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 270

लाना, लाना, सखि तूली।
जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुँचा विरही मतवाला
सती-हीन ज्यों शूली।
लाना, लाना, सखि, तूली।
झुलसा तरु मरमर करता था,
वह निर्झर झरझर करता था,
वन विरही हरहर करता था,
उड़ती थी गोधूली।
लाना, लाना, सखि तूली।
ज्यों ही वह चिता पर आया,
उग अंकुर पत्तों से छाया।
फूल वही वदनाकृति लाया,
लिपटी लतिका फूली।
लाना, लाना, सखि तूली।"[1]

रंग, रेखा, शब्द आदि के माध्यम से अनुभूति को चित्र, मूर्ति अथवा काव्य का रूप दे दिया जाता है। किन्तु मूलतः एक ही अन्तर्वृत्ति से सम्बद्ध होने के कारण एक में दूसरे का अन्तर्भाव सा प्रतीत होता है। कवि में शब्द के माध्यम से चित्र अंकित करने की अद्भुत शक्ति होती है उसी प्रकार चित्रकार में यदि काव्य विधायिनी प्रतिभा प्रखर हो तो मणि-कांचन सहयोग हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला और यशोधरा के माध्यम से चित्रकला का जो उदात्त रूप हमारे सामने रखा है वह उच्चकोटि का है।

1- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 339-340

गुप्तजी के द्वारा वर्णित चित्र प्रायः रंग-रूप के भड़कीलेपन से मुक्त हुआ करते हैं, फिर भी वे अपनी सहज सरलता की दिव्य आभा से उद्भासित होते हैं। उन्होंने चित्रकला को शुद्ध मनोरंजन के रूप में स्वीकार नहीं किया है, उसे उन्होंने मनोरंजन का माध्यम मात्र मानकर सर्वत्र जीवनोन्मुखी बनाने का सफल प्रयास किया है।

गुप्तजी ने अपने प्रबन्ध काव्यों में अनेक स्थलों पर उत्तेजनाहीन सहज-सौन्दर्य को भी मनोरंजन और आह्लाद के निमित्त चित्रण किया है। किन्तु उनके नारी-सौन्दर्य चित्रण में सस्ता मनोरंजन कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है जो हमें निष्पंक भावना के उच्चशिखर पर ला खड़ा करता है। ऐसे प्रसंगों में उन्होंने नारी के जाया रूप को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, जहाँ वह एक साथ ही मादकता भरी लुभावनी रमणी तथा मातृत्व के लावण्य से संवलित चेतनामयी प्रतिभा भी है। इस प्रसंग में जग-जननी तथा अनन्त सौन्दर्यमयी सीता का चित्रण विशेष उल्लेख योग्य है:-

अँचल-पट कटि में खोंस, कछोटा मारे,
सीता माता थीं आज नई छज धारे।
अंकुर-हितकर थे कलश-पयोधर पावन,
जन मातृ-गर्वमय कुशल वदन भव-भावन।
पहने थीं दिव्य दुकूल अहा! वे ऐसे,
उत्पन्न हुआ हो देह-संग ही जैसे।
कर, पद, मुख तीनों अतुल अनावृत पट-से,
थे पत्र-पुंज में अलग प्रसून प्रकट-से।
कन्धे ढक कर कच छहर रहे थे उनके,
रक्षक तक्षक से लहर रहे थे उनके।
मुख धर्म-बिन्दुमय-ओस-भरा अम्बुज-सा,

पर कहाँ कण्टकित नाल सुपुलकित भुज-सा?"[1]

चित् और अचित् अर्थात् चेतन जीव एवं जड़ जगत के समन्वित रूप से ही सृष्टि भासमान होती है। रामानुजाचार्य की दृष्टि से स्वयं चित्-अचित् विशिष्ट ब्रह्म ही ईश्वर है और वह अपनी लीला या क्रीड़ा के लिए स्वेच्छा से इस सृष्टि की रचना करता है। सृष्टि के निर्माण का प्रयोजन एक मात्र लीला है वह लीला करने के लिए ही जगत् एवं जीवों के रूप में अपना विस्तार करता है। विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया के दो रूप माने गए हैं -- अविद्या तथा विद्या। जीवों के विकास में अविद्या बाधक है और विद्या साधक। विद्या जगत की रचना के लिए ब्रह्म की शक्ति मानी जाती है, जो जीव को सांसारिक भोगों से भी विरक्त करके ईश्वर-भक्ति की ओर उन्मुख किया करती है तथा जिसकी प्रेरणा से सांसारिक जीव भगवद् भक्ति में लीन होकर जगत के उपकार में लीन हो जाता है। गुप्तजी ने तुलसीकी ही भाँति माया के इन दोनों रूपों का विशद वर्णन साकेत में किया है। कवि ने ईश्वर की अनन्य शक्ति के रूप में विद्या को स्वीकार किया है और उसी को सिद्ध करने में जीवन की चरितार्थता मानी है:-

" साधो उसको और मनाओ युक्ति से,
सखे, समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।"[2]

गुप्तजी ने साकेत के प्रथम सर्ग में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को ब्रह्म के चार रूप बताए हैं। सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुति कीर्ति ब्रह्म की शक्ति रूपिणी चार माया-मूर्तियाँ हैं:-

" ब्रह्म की हैं चार जैसी मूर्तियाँ,
ठीक वैसी चार माया-मूर्तियाँ।"[3]

1- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 221
2- वही ; पृष्ठ - 142
3- वही ; पृष्ठ - 19

जीव का पुरुषार्थ इसमें है कि वह ब्रह्म की इन पराशक्ति की सहायता से भगवद् कृपा प्राप्त करे। ये शक्तियाँ अपनी लीला से सत्वगुण सम्पन्न भक्तों का आह्लादन करती हुई उन्हें ब्रह्म की ओर उन्मुख कर देती हैं। साकेत में इस दृष्टि से विशिष्टाद्वैतवाद का प्रभाव बहुत अधिक है। गुप्तजीनेजनकपुर - नन्दिनियों को कला की साक्षात् प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है। संगीत और नृत्य के द्वारा वे आह्लादिका शक्ति को जागृत करती हैं और जगत को कर्मोन्मुख बनाती हैं। इस प्रकार गुप्तजी के कला और मनोरंजन विषयक भाव भी आपाततः लौक-सापेक्ष दिखाई पड़ते हैं, किन्तु हैं तत्वतः परमात्मा सापेक्ष ही। गुप्तजी के सभी आदर्श पात्र जिन वस्तुओं के द्वारा मनोरंजन का विधान करते हैं उन्हीं वस्तुओं के द्वारा अवश्यंएव लोक-कल्याण हो जाता है। सब जीवों में एक ही आत्मा के विद्यमान होने का विश्वास और लोक-रंजन के द्वारा लोकोदय की व्यवस्था गुप्तजी के काव्य का केन्द्र बिन्दु है। "कवि ने इस एक ही आत्मा के सर्वत्र प्रसार को प्रदर्शित करने के लिए सीता और राम के जीवन की यह मंजुल झाँकी भी प्रस्तुत की है, जिसमें महारानी सीता उच्च क्षत्रिय कुल की होकर भी जंगल में निवास करने वाली निम्न से निम्नतर कोल, किरात एवं भीलों की बालाओं को अपने समान ही सभ्य एवं सुशिक्षित बनाने का प्रयत्न करती है और उनसे तनिक भी घृणा न करके अपने समान उन्हें नागरभाव प्रदान करने के लिए उन्हें कातना, बुनना, रंगना आदि बड़े उत्साहपूर्वक सिखाती है। इसी तरह उच्च क्षत्रिय कुलोद्भव महाराजा राम वन में जाकर ऋक्ष एवं वानरों के समान निवास करने वाली जंगली जातियों को वीर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं ; उन्हें शिष्ट एवं सुसंस्कृत बनाते हैं तथा उनको सुसंगठित करके सैनिक एवं देशभक्त बना देते हैं। ये सभी उदाहरण इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि कवि ने जिस एक ही आत्मा का सर्वत्र साक्षात्कार किया है, सर्वत्र विकास देखा है और जिसको समान रूप में सर्वत्र व्यापक देखा है, उसी का साक्षात्कार वह पाठकों को भी कराना चाहता है। इसीलिए कवि राम और सीता के जीवन की झाँकियों द्वारा ही नहीं, अपितु उर्मिला के जीवन से भी

अनेक उदाहरण देता हुआ एक की आत्मा के प्रसार एवं विकास की झलक प्रस्तुत करता है। इसी कारण उर्मिला कभी सारिका, कपोत, मुनि आदि पक्षियों पर दया दिखाती हुई दृष्टिगोचर होती है, तो कभी पालतू रक्षक के प्रति उदार होकर उसे विपिन में मुक्त रहकर जीवन-यापन करने की सलाह देती हुई दिखाई देती है।"।

गुप्तजी के काव्य में सर्वत्र मनोरंजन को सात्विक लोक-यात्रा के पथ में अभ्युदय का साधक माना गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सस्ता या निम्नस्तरीय मनोरंजन इनके काव्य में कहीं भी स्थान नहीं पा सका। तीनों लोकों को मुक्त करने के लिए महाकरुणा से द्रवित होकर भगवान तथागत का जब कपिलवस्तु नगरी में पदार्पण होता है, तब यशोधरा के मन में स्वागत गान के द्वारा तथागत के अनुरंजन की कामना जगती है:-

" पर मैं स्वागत-गान करूँगी,
पाद-पद्म-मधुपान करूँगी।"[2]

वाद्य-संगीत को मनोरंजन के श्रेष्ठ साधन के रूप में गुप्तजी ने कई स्थानों पर चित्रित किया है। प्रात की सुकुमार रश्मियाँ वातायन से विरह विधुरा उर्मिला की वीणा को झाँक कर देखती है और उसे निस्पंद पाकर उदास हो जाती है। तभी उर्मिला उसे सम्बोधन कर कहती है:-

" भूल पड़ी तू किरण, कहाँ?
झाँक झरोखे से न, लौट जा, गूँजे तुझसे तार जहाँ
मेरी वीणा गीली गीली,
आज हो रही ढीली ढीली,

1- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - साकेत में काव्य ; संस्कृति और दर्शन ; प्रथम संस्करण ; 1961 पृष्ठ - 381

2- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; 2025वि० ; पृष्ठ- 182

लाल हरी तू पीली नीली,
कोई राग न रंग यहाँ,
भूल पड़ी तू किरण, कहाँ?"1

श्रेष्ठ जन के मनोरंजन के लिए तूलिका, पुस्तक, वीणा और सहानुभूतिशील सुहृद के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है? इसीलिए तो उर्मिला अपनी सहेली से कहती है:-

" तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवी तू प्रवीणा।"2

समाज में राज्याभिषेक के अवसर पर सर्वत्र हर्ष, उत्सव और गान के विधान का उल्लेख मिलता है:-

" हो रहा था हर्ष, उत्सव, गान,
और सबका संग भोजन-पान।"3

गुप्तजी यह मानते हैं कि कुलवधुओं को नृत्य संगीत का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु उनका नृत्य और संगीत उनके पति के मनोरंजन के लिए होना चाहिए। इसीलिए गुप्तजी के काव्य में बहुजन अथवा सामाजिकों के मनोरंजन के लिए कुलवधुओं या कुल-कन्याओं का नियोजन कहीं भी नहीं किया गया है। वे स्वकीय आनन्द अथवा अपने-अपने पति के मनोरंजन के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं साकेत के नवम सर्ग में एक स्थान पर कवि ने नृत्यशीला उर्मिला का चित्रण किया है। वनवास से पूर्व, मिलन के दिनों में, वर्षा ऋतु के आगमन

1- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ- 310
2- वही ; पृष्ठ- 270
3- वही ; पृष्ठ- 187

के आरम्भ में प्रकृति के मादक और मोहक उद्दीपन से अनुप्रेरित होकर उर्मिला अपने प्रकोष्ठ में नाचने लगती है। इसी बीच लक्ष्मण आकर चुपचाप खड़े हो जाते हैं और नृत्य का आनन्द लेने लगते हैं। उस समय उर्मिला के हर्ष और विस्मय का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है :-

" मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी,
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई, मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी। "[1]

वीरों के लिए मनोरंजन का एक बहुत बड़ा साधन आखेट भी है। यद्यपि यह मनोरंजन आपाततः बड़ा क्रूर प्रतीत होता है, किन्तु है यह भय, विस्मय, रोमांचकता तथा आनन्दोल्लास से भरा हुआ। पाण्डव वन-वास काल में कुंज-क्रीड़ा जल-केलि, तड़ाग विहार और आखेट का आनन्द प्राप्त कर जीवन का काल यापन करते हैं :-

" इधर कौरव-दल गौरव धार,
विपिन में करने लगा विहार।
गूँजने लगी गान-गुंजार,
नूपुरों की नव-नव झंकार।
कहीं कुंजों में क्रीड़ा भेंट,
कहीं जल-केलि, कहीं आखेट। "[2]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 296
2- मैथिलीशरणगुप्त - वन वैभव ; 1005 वि० ; पृष्ठ - 21

भारत में आखेट या मृगया को वीरों तथा उच्चस्तरीय व्यक्तियों का मनोरंजन माना गया है। प्रायः सभी महाकाव्यों में नायक के मनोविनोद के लिए आखेट की महिमा का आख्यान हुआ है। " हिडिम्बा " शीर्षक खण्डकाव्य में गुप्तजी ने मानव के मनस्तत्व का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। भीम सुख और दुख की तथा संकट और विपदा की परवाह नहीं करते। हिडिम्बा को मार डालने के पश्चात् कुछ मनोरंजन चाहते हैं और मृगया के द्वारा मनोविनोद की कामना करते हैं :-

" भीम बोले- तीन दिन छुट्टी मना लूँगा मैं
मृगया को वन का विनोद बना लूँगा मैं। "1

गुप्तजी ने मनोरंजन के रूप में घुड़दौड़ के खेल का भी उल्लेख किया है :-

" याद है, घुड़दौड़ का वह खेल,
हँस मुझे जब हाथ से कुछ ठेल,
हय उड़ाकर, उछल आप समक्ष,
प्रथम लक्ष्मण ने धरा ध्वजलक्ष्य "2

यशोधरा नामक खण्डकाव्य में एक स्थान पर मल्लक्रीड़ा का भी उल्लेख है। इससे यह पता चलता है कि राजकुमार लोगों के लिए मृगया की ही भाँति मल्लक्रीड़ा का भी विधान था। उन्हें उसमें बड़ी प्रेरणा मिलती थी। यहाँ इन पंक्तियों में यशोधरा राहुल से कह रही है :-

" त्राण मिलता है मुझे तात। मिल पीड़ा में
प्राण मिलता है तुझे जैसे मल्ल-क्रीड़ा में। " 3

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा : 2013 वि० : पृष्ठ - 30
2- वही, पृष्ठ - 185
3- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा : 2028 वि०, पृष्ठ - 194

मनोरंजन के लिए लोग नदी में नौका-विहार तथा नदी तट पर सैर करने का उपक्रम करते हैं :-

" पार्श्व से यह खिसकती-सी आप,
जा रही सरयू बही चुपचाप
चल रही नावें न उसमें तैर,
लोग करते हैं न तट पर सैर। "।

उत्कृष्ट और निर्दोष मनोरंजन के रूप में झूला झूलने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। गाँव में, अमराइयों में झूला लगाकर गाँव की बालिकाओं और बालकों का सहज ही मनोरंजन होता रहता है। वर्षा ऋतु में वृन्दावन में यमुना के तट पर कदम्ब की डाली में झूला डालकर राधा और कृष्ण के झूलने की कथा का प्रसंग कृष्ण भक्त कवियों ने बड़े ही अनुराग के साथ उठाया है। सावन में हमारे देश में व्यापक रूप में झूलनोत्सव होता है। उल्लास और आनन्द से भरा हुआ झूले का उत्सव किशोर और किशोरियों के मन में भय, विस्मय, रोमांच और साहस का संचार करता है। गुप्त जी ने " साकेत " के नवम सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण के एक साथ झूला झूलने की कथा का उल्लेख किया है। इस प्रसंग में गुप्तजी ने ऐसी युक्तियुक्त उद्भावना की है कि कवित्त मिलन-शृंगार का एक स्मरणीय उदाहरण बन गया है :-

" नंगी पीठ बैठकर घोड़े को उड़ाऊँ कहो,
किन्तु डरता हूँ मैं तुम्हारे इस झूले से,
रोक सकता हूँ उन्हें मैं बल से ही उसे,
टूटे भी लगाम यदि मेरी कभी भूले से।
किन्तु क्या करूंगा यहाँ? उत्तर में मैंने हँस

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 185

और भी बढ़ाये पैग दोनों ओर अनेक,
हैं-हैं कहलिपट गये थे यहीं प्राणेश्वर,
बाहर से संकुचित, भीतर से फूले से।"[1]

तत्कालीन समाज में मृगया भी मनोरंजन का एक साधन माना जाता था। दुर्योधन, शकुनि तथा कर्ण तीनों मिलकर वन में मृगया के लिए जाते हैं। दुर्योधन कहते हैं--

" करेंगे हम मृगया वन में,
घोष यात्रा की है मन में।"[2]

गुप्तजी ने "वन-वैभव" नामक खण्ड काव्य में वन के खग मृग का चित्रण करके वन्य जीवन की सादगी पर दृष्टि निक्षेप किया है। वहाँ के खग मृग पाण्डवों को प्रिय हैं---

वहाँ जो खग-मृग चरते हैं,
प्यार उस पर वे करते हैं,
किन्तु मन ही मन डरते हैं,
पगों में ही सिर धरते हैं।
प्यार के बदले में निर्दिष्ट,
दया ही है उन सबको इष्ट।"[3]

कवि अयोध्या का राजवैभव बताते हुए कहते हैं कि राजप्रसाद के मुख्य द्वार पर बाँसुरी का मधुर स्वर रस से पूर्ण रागिनी बजा रहा है एवं राजमहल

1- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ- 295
2- मैथिलीशरण गुप्त - वन-वैभव ; 2005 वि० ; पृष्ठ-5
3- मैथिलीशरण गुप्त - वन-वैभव ; 2005 वि० ; पृष्ठ- 10

में पिंजरे में बन्द तोता उस बाँसुरी की नकल उतार रहा है।

" सौध सिंह द्वार पर अब भी वही,
बाँसुरी रस-रागिनी में बज रही।
अनुकरण करता उसी का कीर है
पंजरस्थित जो सुरम्य शरीर है। "1

मनोरंजन के लिए तत्कालीन समाज में नृत्य एवं गायन का प्रचार था कवि ने " नहुष " नामक खण्ड काव्य में नृत्य एवं गायन का वर्णन किया है। नहुष सदेह-इन्द्र-पद पाकर अपने मानवीय पुरुषार्थ से विरत नहीं होना चाहता, अतः वह देव-पुरी में भी उदास है। राजा की उदासीनता को दूर करने के लिए उसके हृदय का रंजन करने के लिए नृत्यालाप का प्रबन्ध किया जाता है :-

" अमरावती में भी उदास-से क्यों आप हैं?
आपको रिझावें, वह कौन नृत्यालाप है।

x x x

आँखों और कानों की सुधा भी आज पान की।
की यों नये इन्द्र ने प्रशंसा नृत्य-गान की

x x x

देव-नृत्य देख, देव-गीत-वाद्य सुनके,
नन्दन विपिन के अनोख फूल चुनके,
इच्छा रह जाती किसी अन्य फल की उसे? "2

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 28
2- मैथिलीशरणगुप्त - नहुष ; सोलहवाँ संस्करण ; 2024 वि० ; 32,31,39